स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बँधनकर ॥

वर्ष १९ | गौराब्द ४८७, मास—माधव ६, वार—संकर्षण सोमवार, २९ पौष, सम्वत् २०३०, १४ जनवरी १९७४ | संख्या ८

जनवरी १९७४

श्रीदेवगणाकृतं श्रीभगवत्स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ३।५।३८-५१)

श्रीदेवाः उचुः —

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्न-तापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु-संसार-दुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥१॥

श्रीविष्णुके अंशांश देवताओंकी सृष्टि होनेके पश्चात् परस्पर सम्बन्ध न रहनेके कारण वे लोग ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें असमर्थ होकर हाथ जोड़कर निम्न प्रकारके वाक्योंसे भगवान्‌का स्तव करने लगे—

देवताओंने कहा—हे परम देव ! शरणागत व्यक्तियोंकी ताप-शान्तिके लिए छत्रस्वरूप आपके

पादपद्मोंमें हम प्रणाम करते हैं। इन पादपद्मोंके तलदेशमें आश्रय ग्रहण करनेवाले सभी यति (साधुपुरुष) लोग संसार-दुःखका दूरसे ही बिना किसी परिश्रमके परित्याग किया करते हैं ।।१।।

धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवास्तापत्रयेणाभिहता न शर्म ।
आत्मन् लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥२॥

हे ईश ! इस संसारमें जीव आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक—इन त्रितापों द्वारा आक्रांत (जर्जरित) होकर किसी भी प्रकारसे शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। अतएव हे भगवन् ! विद्याके साथ वर्त्तमान आपके पादपद्मोंकी छायाका ही हम आश्रय ग्रहण करते हैं ।।२।।

मार्गन्ति यत् ते मुखपद्मनीडैश्छन्दःसुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥३॥

ऋषि लोग आसक्तिरहित अन्तःकरणसे आपके मुखपद्म रूप घोसलेमें स्थित वेदरूप पक्षीद्वारा जिस परम पदका अन्वेषण करते हैं एवं निखिल पापनाशिनी सरित्‌श्रेष्ठा (श्रेष्ठा नदी) गंगा जिन पादपद्मोंसे निकली हैं, उस गंगाकी निरन्तर सेवा करते रहनेपर भी भक्त लोग तीर्थपद स्वरूप आपके उन श्रीपादपद्मोंको प्राप्त किया करते हैं ।।३।।

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥४॥

हे भगवन् ! विषयोंमें अभिनिवेशयुक्त व्यक्ति भी श्रद्धा एवं श्रवण कीर्त्तनादिरूपा भक्ति के द्वारा संमार्जित हृदयमें आपके जिन पादपद्मकी उपलब्धि करते हैं, वैराग्य बलसे उस पादपद्मके माधुर्यास्वादन रूप ज्ञानद्वारा तत्वको जाननेमें समर्थ होते हैं, हम उसी पादपद्मका आश्रय ग्रहण करते हैं ।।४।।

विश्वस्य जन्मस्थिति संयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्व पुंसाम् ॥५॥

हे ईश ! विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयके लिए अवतार ग्रहण करनेवाले आपके उन पादपद्मोंमें हम सभी शरणागत होते हैं, जो पादपद्म अपने आश्रित व्यक्तियोंको स्मृति एवं अभय प्रदान किया करते हैं ।।५।।

यत् सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ।।६।।

पुत्र कलत्रादि उपकरणोंके साथ तुच्छ देह गेहादिमें जिनकी 'मैं और मेरा' रूप दुष्ट

आसक्ति प्रबल है, उन सभी पुरुषोंके देह रूपी पुरमें आप अन्तर्यामी रूपसे अवस्थान करनेपर भी उनके लिए वे पादपद्म दुर्लभतासे प्राप्य हैं। ऐसे आपके पादपद्मोंकी हम वन्दना करते हैं ॥६॥

तान् वै ह्यसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥७॥

बहिर्मुख (अक्षज) इन्द्रियोंद्वारा जिनका अन्तःकरण (भगवान्से) दूरमें चला गया है, हे विपुल कीर्त्तिवाले परमेश्वर ! वे लोग निश्चय ही आपकी लीलाकथाके विलास-स्मरण-कीर्त्तनादि सम्पत्तिद्वारा परम कृतार्थ भक्तोंको देख नहीं पाते ॥७॥

पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥८॥

हे देव ! आपके कथामृतपानद्वारा प्रकृष्ट रूपसे वर्द्धित भक्तिद्वारा जिनके अन्तःकरणके सारे मल एवं कपटता पूर्णरूपसे दूर हो गये हैं, ऐसे व्यक्ति वैराग्यसार ज्ञान प्राप्त कर अनायास ही शीघ्र वैकुण्ठलोकको प्राप्त करते हैं ॥८॥

तथापरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥९॥

केवल मोक्ष चाहनेवाले दूसरे व्यक्ति मनकी स्थिरता रूप उपायके प्रभावसे (ज्ञानयोगसे) बलिष्ठा प्रकृतिका जय कर उसी प्रकार पुरुषरूप आपमें सायुज्य प्राप्त करते हैं। उसमें उन्हें बहुत श्रम प्राप्त होता है। किन्तु आपकी सेवाके द्वारा थोड़ा भी श्रम नहीं होता (सब समय सेवाका परमानन्द अनुभव होनेके कारण गौण रूपसे मोक्ष भी मिल जाता है) ॥९॥

तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाद्य त्वयानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।
सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्त्तवे ते ॥१०॥

अतएव हे आदि देव ! लोकोंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे आपने सत्वादि तीन प्रकारके स्वभाव द्वारा हमारी सृष्टिकी है। हम सभी ही आपके अधीन होकर भी परस्पर विरुद्ध स्वभाव युक्त होनेके कारण पृथक् होकर आपके क्रीड़ोपकरण रूप ब्रह्माण्डका निर्माण कर उसे आपको समर्पण करनेमें समर्थ नहीं हो पा रहे हैं ॥१०॥

यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयञ्चान्नमदाम यत्र ।
यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥११॥

हे अज ! हम उस उस अवसरमें आपको जिस प्रकारसे समस्त भोग्य सामग्री समर्पण कर सकें एवं जिस प्रकार हम अन्न भोजन कर सके और जिस स्थानमें रहकर ये सभी जीव

विना किसी विघ्नके आपकी एवं हमारी भोग्य वस्तुओंका संग्रह कर अन्न भक्षण कर सके, हमें ऐसी शक्ति प्रदान कीजिए ॥११॥

त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः।
त्वं देवशक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥१२॥

हे देव ! कारण सहित कार्यस्वरूप देवताओंके आप ही मूल कारण हैं, आप ही अविकृत (विकाररहित) हैं, पुरातन एवं सभीके अधिष्ठाता हैं। आप प्राकृत जन्मरहित हैं, सत्त्वादि गुण एवं जन्मादिके कारणस्वरूप आदि शक्तिमें आपने ही महत्तत्त्व रूप वीर्य प्रदान किया है ॥१२॥

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारि-भयात् पलायनम्।
कालात्मनो यत् प्रमदा युताश्रमः स्वात्मन् रतेः खिद्यतिधीर्विदामिह ॥१३॥

हे प्रभो ! (आपकी विरोध भंजिका अचिन्त्य शक्तिके बलसे) आप निस्पृह होकर भी जो कर्म करते हैं, प्राकृत जन्मरहित होकर भी जो जन्म स्वीकार करते हैं, स्वयं कालस्वरूप होकर भी जिस शत्रु भयसे पलायन करते हैं एवं दुर्गका आश्रय लेते हैं एवं आत्मरति होकर भी जो बहुत रमणियोंद्वारा परिवृत होकर गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं—इन सभी विषयोंमें समाधान करने जाकर विद्वान् व्यक्तियोंकी बुद्धिमें भी सन्देहका उदय होने लगता है ॥१३॥

ततो वयं मत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देवक्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥१४॥

अतएव हे परमात्मन् ! महत्तत्त्व आदि जिस कार्यके लिए हम उद्भूत हुए हैं, हम आपकी क्या सेवा करें, इस विषयमें हमें आपके अभिलषित कार्य-सम्पादनके लिए क्रिया शक्ति के साथ ज्ञान भी प्रदान करें ॥१४॥

—:※:—

परमार्थकी बात

सब प्रकारसे अयोग्य मैं हूँ, इसलिए भगवान्‌की दयाका अधिक पात्र भी मैं ही हूँ। जिनमें अधिक योग्यता है, वे लोग भगवान्‌की दया अधिक प्रार्थना न करनेपर भी अपने अपने कृतित्व या सामर्थ्यके बलपर मंगलके पथ पर जा सकते हैं। किन्तु मुझे ऐसी आशा-भरोसा नहीं है, मैं सबसे दीन हूँ, नितान्त अकिंचन हूँ। इसलिए भगवान्‌की दया-भिक्षा को छोड़कर मेरे लिए कोई उपाय या आश्रय नहीं है। उस आश्रयके दाता श्रीगुरुपादपद्म ही मेरे एकमात्र आश्रय या गति हैं।

'अहं ब्रह्मास्मि' आदि वाक्य बहुत बार बहुतसे व्यक्तियोंके मुखसे सुने जाते हैं एवं ऐसी उच्च आकांक्षा बहुत उन्नत हृदयमें अभिव्यक्त है। मेरे श्रीगुरुपादपद्मने श्रीगौरसुन्दर भगवान्‌के निकटसे जो बात सुनी है, उन्होंने वही उपदेश मेरे कानोंमें प्रदान कर कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥

श्रीश्रीगौरसुन्दरने जगत्‌को जो शिक्षा दी है, वही शिक्षा मेरे गुरुपादपद्मसे मैंने मन्त्र रूप से प्राप्त किया है। श्रीगुरुपादपद्मने हमें जो वस्तु दी है, वह साधारण मन्त्र नहीं, महामंत्र है। मनन धर्मसे जो त्राण करती है, उसी वस्तुका नाम मन्त्र है। साधारण मन्त्र चतुर्थ्यन्त पद एवं 'नमः', 'स्वाहा', 'स्वधा' आदि शब्द-प्रयुक्त है और महामन्त्र सम्बोधनात्मक पद है। श्रीभगवान्‌का नाम ही महामंत्र है। वे श्रीनाम इतना शक्ति धारण करते हैं कि जो शक्ति दूसरी किसी वस्तुमें पायी नहीं जाती। वे नाम वैकुण्ठनाम हैं। वे नाम इस कुण्ठाधर्मयुक्त गुणजात जगत् की विभिन्न भाषाओंके शब्दोंकी तरह जान पड़नेपर भी उनमें (नाममें) सम्पूर्ण विशेषता है। वह नाम वैकुण्ठनाम है—"वैकुण्ठनामग्रहणं अशेषाघहरं विदुः"—जिन वैकुण्ठ नामके आभासद्वारा सारे पाप अनायास ही नष्ट हो जाते हैं, वह नाम सब समय कीर्त्तनीय है। वैकुण्ठ-नाम उच्चारण करनेपर मनुष्य वैकुण्ठमें अवस्थित होता है, परम धर्ममें अवस्थित होता है, परमार्थ-प्राप्त करनेके लिए व्यस्त होता है। किन्तु मायिक या कुण्ठनाम वैसा नहीं है।

हमारा भाग्य ऐसा मन्द है कि हमारी सर्वशक्तिमान् वैकुण्ठ-नाममें रुचि न होनेके कारण हम दूसरी बातोंमें डूबे हुए हैं। जगत् के दूसरे-दूसरे कार्योंको करनेके लिए—दूसरी-दूसरी अभिलाषाओंको चरितार्थ करनेके लिए, दूसरी चर्चाएँ करनेके लिए हम जो सभी शब्द व्यवहार करते हैं, वे सभी भाषागत शब्द हमारी सेवा करते हैं, हमारी इन्द्रियोंके अधीन

होते हैं, हमारी अभिलाषाओंकी पूर्त्तिमें नियुक्त रहते हैं। किन्तु वैकुण्ठ नाम ऐसे नहीं हैं।

हमारे मंगलके लिए "अहं ब्रह्मास्मि" श्रौतमन्त्रका जो यथार्थ अर्थ है, जीवकी परमावस्था-प्राप्तिके पश्चात् जो होता है, श्रीश्रीगौरांगदेवने 'तृणादपि सुनीच' श्लोकमें वह कह दिया है। दूसरे-दूसरे शब्द हमें ऊँची आकांक्षा या दुराकांक्षाके स्रोतमें बहा ले जाते हैं, किन्तु वैकुण्ठ-नाम हमें कृष्ण-सेवाके पथमें ले जाते हैं, हमारे ऊपर उनका पूर्ण प्रभुत्व, पूर्ण स्वराज्य स्थापन करते हैं। उन नाम-प्रभको मैं नमस्कार करता हूँ। उन नाम-प्रभुके दाता-शिरोमणि श्रीगुरुपादपद्मको मैं सबसे पहले प्रणाम करता हूँ।

आज हमारा कर्त्तव्य है परमार्थ-विषयकी आलोचना। अर्थ एवं परमार्थमें परस्पर वैशिष्ट्य है। परमार्थ कहनेसे आत्माकी पूर्ण गतिको जानना होगा। आत्मा जड़वस्तु नहीं है, जो उसकी गति नहीं रहेगी। जब अनात्म अनुभूति हमें जड़ीभूत करती है तब उससे विमुक्ति पानेके लिए हमारे हृदयमें शान्ति-प्राप्तिकी एक आकांक्षा जागती है। क्योंकि हम अशान्त राज्यमें वास कर रहे हैं, इसलिए हम शान्तिके प्रयासी होते हैं। वह शान्ति क्या जाड्य जातीय द्रव्य है? निश्चय ही नहीं, बल्कि परम गतिविशिष्ट है, जिस गतिकी तरह दूसरी गति नहीं हो सकती। मोटर, हवाई यान आदिकी जड़ गति इस गतिके साथ कभी भी तुलनाके योग्य नहीं हो सकीं। वह शांति पूर्ण प्रगतिमयी है। जहाँ पूर्ण चेतनकी क्रिया की जितनी अभिव्यक्ति है, वहाँ गतिका उतना ही प्रकाश है। इस प्रकार प्रगतिकी पराकाष्ठा युक्त परमार्थका अनुसंधान करना, उसकी आलोचना करना हमारा कर्त्तव्य है। इस उद्देश्यमें सहायता प्राप्त करनेके लिए हम मनीषियोंके निकट उपस्थित हुए थे। हमारा जगत्में कुछ भी नहीं है; हमारा अभिजात्य (ऊँचे कुलका बड़प्पन), ऐश्वर्य, पाण्डित्य, श्री आदि कुछ भी नहीं है। हम अकिंचन हैं।'

भगवान्का आश्रय न ग्रहण करनेपर मायाके प्रभु होनेकी जो इच्छा हमारे हृदय आकर उपस्थित होता है, वैसे प्रभुत्व की कामना या अहंकार हमें जिस अर्थकी ओर ले जाता है, वह परमार्थ नहीं, अनर्थ है। जिस प्रकार गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥

अर्थात् प्राकृत अहंकारसे अत्यन्त विमूढ़ व्यक्ति प्रकृतिके गुणोंके अधीन होकर किये जानेवाले कर्मोंका कर्त्ता मैं हूँ—ऐसा समझता है।

जो अनर्थ—जिस अधनका परित्याग कर धन-लाभके लिए जो यत्न हो, उसमें श्रीगौरांगसुन्दरकी बात बहुत ही अनुकूल है। सब समय तृणसे भी सुनीच होकर श्रीहरिका कीर्त्तन करना होगा। कुछ समयके लिए दीनता प्रकाश की, कपटताके साथ झूठमूठके भाव दिखाए, दूसरे ही क्षण अहंकारमें मत्त हो गया—ऐसा नहीं। हमें भगवान्के नाम-ग्रहणमें जिन्होंने योग्यता दी है, उनके चरणोंमें पुनः अर्थात् द्वितीय बार प्रणाम करता हूँ।

जो व्यक्ति तृणसे या सुनीच हैं, उसकी अपेक्षा सुनीचका आदर्श प्रकट करनेवाले जो अकिंचन पुरुष हैं, उनका दास्य करनेपर या सेवा करनेपर हम सभी परम-अर्थ प्राप्त कर सकेंगे। उनकी पादपद्म-सेवाका उल्लंघन करने पर कदापि सुविधा न होगी। हमारे गुरुपादपद्म अपनेको पुरीष (मल) के कीटसे भी तुच्छ एवं जगाई-माधाईसे भी पापी मानते हैं। उनके नाम ग्रहण करनेवाले व्यक्ति का पाप होता है एवं उनके नाम-श्रवणकारी व्यक्तिका पुण्य नष्ट होता है—ऐसी उनकी दीनता है।

इस प्रकारके महान् श्रीगुरुपादपद्मकी सेवा करनेकी दुर्लभ आशा—ऊँची आकांक्षा, उन श्रीगुरुपादपद्मके सेवकोंके अनुग्रह द्वारा ही प्राप्त होता है।

जगत्‌के विद्वत्-समाजके व्यक्तियोंके साथ बातचीत करनेकी भाषा मैं नहीं जानता। मैं जगत्‌के सभी व्यक्तियोंके निकट अनुग्रह प्रार्थना करता हूँ। इसलिए मुझ जैसे अयोग्यतमको भी जो गुरुतर-कार्यका भार अर्पण किया गया है, वह बात मैं स्वयं समझता हूँ एवं दूसरे सभी भी समझते हैं। यदि जन्म, ऐश्वर्य, विद्या एवं श्री रहें, तब भगवान्‌का स्मरण नहीं हो पाता। इनमेंसे किसीमें भी मेरी सुविधा नहीं है। इसलिए शास्त्रोंका कहना है—

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं
शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति
भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति॥

मेरी कृषि नष्ट हो गई है, इसलिए भगवान्‌की सेवाको छोड़कर मेरे लिए और कोई गति नहीं है अर्थात् मैं जो सबसे अधम हूँ, इस विषयमें आप लोगोंमें भी कोई मतभेद न होगा। जब जन्म, ऐश्वर्य, विद्या, श्री—इनके प्रति आशा भरोसा नहीं है, तब भगवान्‌के नाम ग्रहणको छोड़कर मेरे लिए और कोई उपाय नहीं है। इसलिए आज मुझे ऐसे कार्यके लिए चुना गया है। अतएव मैं झुके हुए मस्तकसे मेरे गुरुवर्गद्वारा प्रदत्त इस भारको ग्रहण करता हूँ। मैं इस जगत्‌के किसी काव्य-शास्त्रमें पण्डित नहीं हूँ, इस जगत् के शब्द-शास्त्र, व्याकरण आदिका मुझे ज्ञान नहीं है, इसलिए आप लोगोंके निकट मेरी भाषा कठिन या व्याकरण-दोषयुक्त प्रतीत हो सकती है। तथापि मैंने मेरे श्रीगुरुपादपद्मसे श्रीचैतन्यदेवकी जिन सभी बातोंका श्रवण किया है, वह आप लोगोंके निकट कहनेकी मुझे अत्यन्त अभिलाषा हो रही है।

चित् एवं अचित् (जड़) मिश्र जीवोंकी अनुभूतिसे युक्त हमारे लिए एकमात्र परमोपास्य वस्तु, वास्तव विषय एवं आश्रय मिलित-वस्तु श्रीचैतन्यदेव हैं। चित् या सम्वित्—स्वतन्त्र है। अचित् या अज्ञान अस्वतन्त्र है। ज्ञान एवं ज्ञानका अभाव—यह मिश्र-भाव सम्पन्न हम बद्धजीव हैं। ऐसे हमारे एकमात्र उपास्य श्रीचैतन्यदेव हैं। विषय एवं आश्रय मिलित जो अप्राकृत शरीर है, वे वही वस्तु हैं। जड़ विषय एवं जड़ आश्रयको लक्ष्य कर यह बात कही नहीं जा रही है। जड़ जगत्‌में असंख्य विषय एवं असंख्य आश्रयके

अभिमानसे हम सभी अभिमानी हैं। पूर्णचेतन भगवान् किसी भी अस्वतन्त्रता (परतन्त्रताके अधीन नहीं हैं। इसलिए उन्हें ही 'विषय' कहा जाता है। उनके योषा-सम्प्रदाय (अधीन भोग्य भक्तसमूह) को 'आश्रय' कहा जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु यदि केवल विषय-विग्रह की लीला करते, तो चित्-अचित् मिश्र बद्ध जीवोंका मङ्गल नहीं होता, ऐसा होनेपर उनके साथ झगड़ा लग जाता। "प्रकृतेः क्रियमाणानि" श्रीगीताके इस वाक्यके अनुसार हम जो जड़ जगतके कर्ता या विषयका अभिमान कर रहे थे, श्रुतिके तात्पर्य समझने में विमुख होकर "अहं ब्रह्मास्मि" वाक्यका उच्चारण कर 'विषय' सजनेकी जो बड़ी आकांक्षा या दुराकांक्षा पोषण कर रहे थे, क्षुद्र होकर बृहत् वस्तुके प्रति जो मुख-भंगी कर रहे थे, उस अमङ्गलके हाथोंसे हमारा उद्धार नहीं हो सकता था, यदि विषय-विग्रह श्रीचैतन्य महाप्रभु आश्रयका रूप एवं भाव नहीं ग्रहण करते। श्रीगौराङ्गदेव सेवाधर्मके मूर्तिमान् विग्रह हैं, किन्तु स्वयं विषय तत्त्व हैं। जिस विषय तत्त्वसे अनन्तकोटि जीव प्रकाशित हुए हैं, वे विषय-विग्रह श्रीबलदेवजी के भी प्रभु, परम विषय हैं। इसलिए उन्हें हम 'महाप्रभु' कहते हैं। वे विषय-विग्रह होकर भी आश्रयके भाव एवं कान्ति ग्रहण किये हुए हैं। इस जगतसे देखनेपर विषय एक आधा भाग है एवं आश्रय दूसरा आधा भाग है। हम विषयविग्रहसे च्युत हो या दूर होकर जगत्के विषय-विग्रहका जो अभिमान करते हैं, मूल आश्रय विग्रह ने विषय-विग्रहके प्रति सेवाकी जो अनुकूलता है, उससे अलग होकर विपथ गामी हो रहे हैं। उससे हमारी रक्षा प्राप्त करनेके लिए विषयविग्रहने आश्रय विग्रहका रूप ग्रहण किया है। उनके रूपकी तुलना नहीं हो सकती। मैं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्दका भोगी चित्-अचित् मिश्रित जीव हूँ। मैं रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द रूपी पिंजड़ेमें या मनोधर्मके पिंजड़ेमें आबद्ध हूँ। ऐसा नर-शरीर विशिष्ट होकर सर्वदा मैं परमार्थविहीन हूँ, सर्वदा भगवान्की सेवासे वञ्चित हूँ। इसलिए हमारे लिए श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रय को छोड़कर दूसरी गति नहीं है।

विषय एक ही है दूसरा नहीं—'एकमेवाद्वितीयम्'। छान्दोग्य उपनिषदमें कहा गया है—

"श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये।"

इस जगत्से एक अन्तरमें स्थित गोलोक-पदार्थका एक तरफ देखा जाता है, दूसरा तरफ देखा नहीं जाता—उन्नतांशमें न जानेपर देखा नहीं जाता।

साधारण साहित्यकार व्यक्ति जिस विषय-आश्रयकी बात आलोचना करते हैं, उसमें विपर्यास बहुत है। भरत मुनिने अलङ्कार शास्त्रमें जिस विषय-आश्रय युक्त बातकी आलोचना की है, उससे हम यह जान पाते हैं कि विभाव, अनुभाव, सात्त्विक एवं व्यभिचारी—इन चार प्रकारकी सामग्री की सम्पूर्णता सम्पन्न होती है, यदि वे स्थायी भावके साथ मिलित हों। उसके द्वारा एक सुन्दर पाना या रस प्रस्तुत होता है। कोई

कोई कह सकते है कि रसकी सृष्टि तो इस जगतमें भी हो रही है। यहाँ असम्पूर्णताके साथ अस्थायी भावके सम्मिलनसे विकृत एवं खण्ड रसका उदय हो रहा है, इसलिए वह परिवर्तनशील धर्मके अधीन है। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके सेवक ही इस बातको अच्छी तरह समझ सकते हैं, दूसरोंके लिए यह बड़ा कठिन कार्य है।

श्रीगुरुपादपद्मसे सुने गये विषयको छोड़कर व्यक्त या अव्यक्त तार्किक व्यक्ति के निकटसे यद्यपि कोई बात सुननेकी हमारी योग्यता नहीं है, ऐसा होने पर भी हम उनके निकटसे बहुतसी बातें सुनकर व्यतिरेक भावसे या भिन्न रूप से सहायता प्राप्त कर सकते हैं। असात्वत शास्त्रोंमें बहुत-सी बातें हैं, जो सत्यके समर्थक रूपसे कही जा सकती हैं। महाजनोंने भी असात्वत शास्त्रसे वास्तव सत्यके समर्थक रूपसे बहुतसे वाक्योंका उद्धरण कर प्रमाण कर दिखलाया है कि सात्वत शास्त्रोंने यह बात स्वीकार की है एवं असात्वत विचारकोंके लिए इसे अस्वीकार करनेका उपाय नहीं है। इसलिए हमने इस विषयमें दूसरा पथ ग्रहण किया है, ऐसा जो बाहरी रूपसे जान पड़ता है, उसमें हमने कुछ अधिक दोष नहीं किया है, ऐसा ही अनुभव होता है। हम असात्वत व्यक्तियोंके निकट ऐसी बात पायेंगे, जो हमारी सहायता करेगी—अन्वय या सीधे रूपसे नहीं, बल्कि व्यतिरेक या भिन्न रूपसे। केवल गुरुपादपद्म ही अन्वय रूपसे सहायता प्रदान किया करते हैं। मूल बात यही है कि दुःसंग करनेका हममें कोई प्रयास नहीं है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति)

१—एकान्त भक्तका क्या विश्वास है ?

"कृष्ण ही एकमात्र रक्षा करनेवाले हैं एवं किसी कार्यद्वारा रक्षा नहीं हो सकती या और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है, ऐसा ही विश्वास एकान्त भक्तोंका होता है।"

—चै० शि० ६।३

२—परामुक्ति और पराभक्ति क्या पृथक् पृथक् तत्त्व हैं ?

"भुक्ति एवं पराभक्तिमें कुछ भी भेद नहीं है। बल्कि जो व्यक्ति भेददृष्टिसे देखें, उन लोगोंने दोनोंमें से किसीकी भी उपलब्धि नहीं की है, यही जान पड़ता है।"

—त० सू० १९वाँ सू०

३—ऐकान्तिक व्यक्ति कौन-कौनसे भक्ति अङ्गका पालन करते हैं?

"एकान्त कृष्णभक्तोंको श्रीकृष्ण-स्मरण एवं श्रीकृष्ण-कीर्त्तन ही अत्यन्त प्रिय होते हैं। प्रायः वे लोग इन दोनों अङ्गोंको छोड़कर और किसी अङ्गमें अधिक व्यस्त नहीं होते।"

—'समालोचना', स० तो० १०।६

४—नाम-साधकके लिए किस विषयमें आग्रह रहना आवश्यक है?

"जो व्यक्ति नामसाधनमें फल प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए तीन विषयोंमें आग्रह रहना आवश्यक है अर्थात् साधुसंग, सुनिर्जनता एवं अपना दृढ भाव या पराकाष्ठा इसे निर्बन्ध कहा जा सकता है।"

—'भजन-प्रणाली' हृ० चि०

५—निर्बन्ध शब्दका क्या अर्थ है?

"निर्बन्ध करनेसे यही तात्पर्य है कि साधक १०८ संख्या युक्त तुलसीमालामें ये सोलह नाम बत्तीस अक्षरका उच्चारण करेंगे। चार बार माला फेरनेसे एक ग्रन्थ होता है। एक ग्रंथका नियम कर धीरे-धीरे बढ़ाते बढ़ाते १६ ग्रंथोंमें एक लाख नामका निर्बन्ध होगा। क्रमशः तीन लाख करनेपर सब समय नाममें ही व्यतीत होगा। सभी पूर्व महाजनोंने श्रीचैतन्य महाप्रभुका यह आदेश पालन कर सर्वसिद्धि प्राप्त की थी।"

—'प्रमाद' हृ० चि०

६—व्यवधान दोष क्या परित्याग करने योग्य नहीं है?

"नाम निरन्तर होना आवश्यक है—नाम ग्रहण समयमें दूसरी इन्द्रियोंकी क्रियाका व्यवधान या बाधा आकर व्याघात या विच्युति न करें।"

—'ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति',
श्री भा० म० मा० १३।१५

७—नामग्रहण कालमें साधकमें कैसी चित्तवृत्ति होना आवश्यक है?

"नाम-ग्रहण करते समय ऐसी आशा मेरे हृदयमें उदित होकर नाच करे—अजातपक्ष (पङ्खविहीन) पक्षीशावक जिस प्रकार जननी को देखनेकी आशा करते हैं, बछड़े जिस प्रकार भूखसे व्याकुल होकर अपनी माता गायके स्तनोंका पान करनेके लिए प्रतीक्षा करते हैं, विदेशमें गये हुए प्रिय व्यक्तिके ध्यानमें प्रिया जिस प्रकार व्याकुल होती है, मेरा मन भी उसी प्रकार आपके दर्शन-लालसामें व्यग्र हो।"

—'ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति',
श्री भा० म० मा० १३।१६

८—नामाश्रित व्यक्तियोंके लिए कर्मज्ञान सम्मत प्रायश्चित्त करना क्या आवश्यक है?

"जिन व्यक्तियोंने नामका आश्रय ग्रहण किया है, उनके लिए कर्म-ज्ञान-सम्मत दूसरे

प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है।"

—'ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति'

श्री भा० मु० मा० १३।१७

९—ऐकान्तिक नामाश्रित व्यक्तिका आचार-विचार किस प्रकारका होता है?

"काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन छः चित्तवृत्तियोंके दुर्व्यवहारसे ही पाप होता है। जो व्यक्ति नामके ऐकान्तिक आश्रय ग्रहणकारी हैं, वे कोई पाप नहीं करते। वे कृष्णकथामें एवं कृष्णसेवामूलक वैष्णव संसार में कामको नियुक्त कर देते हैं एवं परस्त्री-संग्रह, प्रयोजनसे अधिक अर्थ-संग्रह, प्रतिष्ठापरायणता, वञ्चना एवं चोरी आदि दुष्ट कर्म कदापि नहीं करते। कृष्ण-वैष्णव विद्वेषीके प्रति क्रोधको नियुक्त कर बहिर्मुख सम्बन्धको दूर करते हैं। अतएव परपीड़न एवं निर्यातन रूप क्रियासे दूर रहते हैं, क्रोध उस स्थलमें तरु-धर्मकी तरह सहिष्णुतामें बदल जाता है। कृष्ण-रस आस्वादनमें लोभको नियुक्त कर अच्छा खाना-पहनना, सुन्दरी स्त्रीका संग एवं अत्यधिक अर्थ-संचयके प्रति दृष्टिपात नहीं करते। मोहको विदूरममें नियुक्त कर कृष्णलीलाके सौंदर्य एवं वैष्णव चरित्रके प्रति मोहित होते हैं। धनजन एवं जड़ सुखादिमें मोह प्राप्त नहीं होते, असत्सिद्धान्तसे मोहित होकर मायावाद, नास्तिक्यवाद एवं कुतर्क प्रियता आदिमें मनको कदापि नहीं देते। मद को कृष्णदास्याभिमानमें नियुक्त कर जातिमद, धन-मद, रूप-मद, विद्या-मद, जन-मद एवं बल-मदका दूरसे ही परित्याग करते हैं। मात्सर्य अर्थात् परहिंसा द्वारा अपनी उन्नति साधन-चेष्टाका पूर्णरूपसे परित्याग करते हैं। ऐसे नियमित जीवनमें पापका उदय नहीं होता, पाप प्रवृत्तिका जड़से ही नाश हो जाता है। तब कभी किसीमें घटनावशतः कोई पाप उपस्थित हो सकता है, जो बिना प्रायश्चित्तके ही प्रशमित हो जाता है।"

—'नामबलपर पापप्रवृत्ति एक नामापराध है', स० तो० ८।९

१०—मतवादकी कपटताके आश्रय ग्रहणकारी 'नाम-साधक' नामधारी व्यक्ति क्या प्रेम प्राप्त करते हैं?

"जिस प्रकार औषधि एवं मन्त्रका वीर्य न जान कर भी रोगीफल प्राप्त करते हैं उसी प्रकार नाम शक्ति न जानकर भी जो व्यक्ति नाम करें, वे अनायास ही नामफल प्राप्त करते हैं। मतवाद के द्वारा कुसंस्कृत, दूषित व्यक्ति यदि कपटता का आश्रय ग्रहण करें, तो उन्हें उनकी कपटता के अनुसार जो फल देनेकी शक्ति रखते हैं, वह फल ही देते हैं, प्रेमादि उन्नत फल कदापि नहीं देते।"

—'ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति',

श्री भा० म० मा० १३।२४

११—प्रकृत या यथार्थ व्रजवास किस प्रकारका है?

"अप्राकृत भावके साथ निर्जनवास ही 'व्रजवास' है। संख्याके साथ हरिनाम करते करते अष्टकालीय सेवा करनी होगी। देहके सभी कार्य विरोधी न हो—ऐसी विवेचना करते हुए उसके सम्बन्धमें सभी क्रियाओंको

सेवानुकूल रूपसे उचित प्रकारसे करना होगा।"

—जै० ध० ४०वाँ अ०

–जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्रतिष्ठाशा

मनुष्यमात्र ही या जीवमात्र ही प्रतिष्ठा चाहते हैं। जो व्यक्ति या व्यक्ति लोग यह कहें कि हम प्रतिष्ठा नहीं चाहते, वे लोग अस्वाभाविक बात कहते हैं। प्रतिष्ठा ही स्वाभाविक अवस्थान है, अप्रतिष्ठासम्पूर्ण अस्वाभाविक है।

मनुष्य प्रतिष्ठाको परम प्रयोजन जानकर प्रतिष्ठा पानेके लिए विश्व ब्रह्माण्डका आलोड़न करनेमें भी थोड़ी भी त्रुटि नहीं रखते। प्रतिष्ठा-संग्रहके लिए वे लोग कर्मवीर, धर्मवीर, ज्ञानवीर, योगवीर, तपोवीर, व्रत-वीर बनते हैं। प्रतिष्ठा-संग्रहके लिए अपने प्रियतम प्राणका भी विसर्जन कर देते हैं। देह-गृहकी सुख-सुविधा आदिका भी परित्याग कर देते हैं। अनशन-व्रत, प्रायोपवेशन द्वारा तिल-तिलमें जीवन विसर्जनका विज्ञापन प्रचार करते हैं, कभी तो विपुल प्रतिष्ठा-संग्रह की आशासे कारागारका भी वरण करते हैं। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, आत्मीय, स्वजन, देश, समाज, यहाँ तक कि प्राणोंसे भी प्रियतर अर्थ-परित्यागमें भी विचलित नहीं होते। प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी प्रबल आकांक्षा प्रबल वायुवेग की तरह मनुष्य हृदयकी आशा-कोषमें प्रवेश कर जगत्में असंभव समझे जानेवाले कार्य, लोक विस्मयकर त्याग, वैराग्यका आदर्श प्रस्तुत कराती है।

कनक-कामिनीके बिना मनुष्य बल्कि जीवन धारण कर सकता है, किन्तु बिना प्रतिष्ठाके मनुष्य एक मुहूर्त भी जीवन धारण कर नहीं सकता। बहुतसे योगी-तपस्वी वन-जंगलमें, हिमालयकी गुफामें वायुभक्षण या पत्र-फूल भक्षण कर जीवन धारण करते हैं। उनके लिए स्थूल कनक-स्पर्शकी आवश्यकता नहीं होती। उनमेंसे बहुतसे स्थूल कामिनीका भी स्पर्श नहीं करते, किन्तु इस समयमें भी उनके अस्तित्व-संरक्षणका एकमात्र अवलम्बन प्रतिष्ठाशा है। कनक-कामिनीकी पिपासा प्रतिष्ठा-पानीयके प्रतिनिधित्वसे परितृप्त हो सकती है, किन्तु प्रतिष्ठाकी पिपासा केवल कनक-कामिनी द्वारा परितृप्त नहीं होती।

प्रतिष्ठाकी प्रतियोगिताकी उत्तेजना एवं मादकता स्थूल कनक-कामिनीकी आवश्यकता बोधको कई समय भुलाकर रख सकती है।

जो व्यक्ति कहते हैं कि हम प्रतिष्ठा नहीं चाहते, सक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर वे लोग प्रतिष्ठा न चाहने रूप आत्मप्रतिष्ठाके विज्ञापन-प्रचारद्वारा अधिकतर प्रतिष्ठा चाहते हैं। कोई कोई व्यक्ति प्रतिष्ठाके भयसे उच्च कीर्त्तन नहीं करते, हरिकथा प्रचारके पक्षपाती नहीं होते, निर्जनमें ध्यान, जप, स्मरण, मननका अभिनय करते हैं, कोई तो पूर्ण मौन रहकर प्रतिष्ठा-प्राप्तिके भयसे अपनेको सुरक्षित समझते हैं। कोई कोई धातुपात्रका स्पर्श नहीं करते। टिकट खरीदते समय अर्थादि स्पर्श करना होगा, इस भयसे रेल, जहाज आदि में नहीं चढ़ते। प्रतिष्ठा भयसे भीत एवं प्रतिष्ठाकी आशासे परिमुक्त अभिमानकारी इन सभी लोगोंके आचरण श्रीरूप शिक्षाके रासायनिक विश्लेषणागारमें परीक्षण करनेपर जाना जाता है कि प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी भय अपेक्षा उनकी प्रतिष्ठाकी जो सामान्य पूंजी है, वह पीछे नष्ट न हो जाय, इस भयसे वे इन सभी बाहरी आचरणका कपट विज्ञापन प्रचार किया करते हैं। प्रवाद है—"तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किञ्चिन्न भाषते।" प्रतिष्ठाके भय से भीत-परिचय देनेवाले कीर्त्तन-परित्यागकारी मौन-व्रत-धारी व्यक्तियोंके भीतरका अन्तःस्थल अन्तर्भेदी श्रीरूप-शिक्षाके आलोक द्वारा दर्शन करनेपर उनके अन्दरमें ऐसे प्रवादकी प्रतिमा ही प्रतिष्ठित देखी जायेगी। पीछे प्रचार करने पर मेरी मूर्खता एवं अज्ञता प्रकाश हो जायेगी, इसलिए हम कभी मौन-व्रती बनते हैं, हरिकथा प्रचार करनेपर मेरे आचरणका अन्याय एवं असम्पूर्णताएँ दूसरे लोग जान लेंगे एवं उससे मेरी प्रतिष्ठा नष्ट होगी, इसलिए हम कई समय प्रचारक होनेकी अपेक्षा निर्जन भजनकारीके प्रच्छन्न प्रतिष्ठा-वरण कार्यको अच्छा समझते हैं। धातु-द्रव्यके स्पर्श न करने की प्रतिष्ठाका विज्ञापन मैं स्वयं ढोल पीटकर प्रचार न करनेपर भी मेरा कोई शिष्य या अनुगत व्यक्ति उसे किसी न किसी उपायसे दूसरोंके निकट प्रचार कर देगा, भीतर ही भीतर ऐसा जानकर मैं स्वयं नीरव, निरपेक्ष, गम्भीर बाहरी प्रतिमूर्त्ति दिखलाकर अप्रत्यक्ष रूपसे प्रतिष्ठाका ही संग्रह करता हूँ। इसलिए स्पष्ट एवं प्रच्छन्न रूपसे हम सभी ही प्रतिष्ठा चाहते हैं। जो व्यक्ति मुखमें सरल भावसे यह कहते हैं कि हम प्रतिष्ठा चाहते हैं, वे तो चाहते ही हैं, एवं जो व्यक्ति असरल भावसे मुखसे प्रतिष्ठा नहीं चाहते, ऐसा कहते हैं, वे भी 'द्राविड़-प्राणायाम' की तरह और भी अधिकतर प्रतिष्ठा ही चाहते हैं। अतएव प्रतिष्ठा चाहना ही हमारा स्वभाव है, न चाहनेकी बात सम्पूर्ण अस्वभाविक, असत्य एवं असंभव है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुका धर्म, श्रीरूप प्रभु का धर्म या शुद्ध वैष्णव धर्म स्वाभाविकता, सत्य एवं सरलताके ऊपर प्रतिष्ठित है। जो व्यक्ति श्रीरूप गोस्वामीकी शिक्षामें शिक्षित, दीक्षित हैं, वे लोग यह देखते हैं कि कौन सी

प्रतिष्ठा यथार्थ प्रतिष्ठा है। 'प्रति' पूर्वक 'स्था' धातु भावसे 'ड' का योग कर प्रतिष्ठा शब्द निष्पन्न हुआ है। 'स्था' धातुका अर्थ अवस्थान है, स्थिति है। कौन सी वस्तु या किसकी वस्तुसे हमारी स्थितिका पूर्ण स्थायित्व सम्पन्न हो सकता है? जन्म-भंगके देशमें जन्म-भंगके कालमें एवं जन्म-भंगके पात्रमें जो स्थिति है, वह नित्य स्थिति नहीं है। सामयिक स्थिति मात्र हैं। सभी स्थिति शक्ति या सत्ता शक्ति, जिसे दार्शनिक भाषामें 'सन्धिनी'-शक्ति' कहा जाता है, उसके मालिक या शक्तिमत् विग्रह कौन हैं? उन मूल-पुरुषका अनुसंधान किया जाय। अनुसंधानसे जाना जाता है कि श्रीबलदेव या श्रीनित्यानन्द ही समस्त स्थिति-शक्तिके मूल मालिक हैं। उनके पादपद्मोंसे सभी सत्ताकी उत्पत्ति हुई है। सभी प्रतिष्ठाके एकच्छत्र मालिक एकमात्र श्रीनित्यानन्द राय हैं। उनके चरणाश्रय ग्रहण करनेपर ही जीवकी यथार्थ प्रतिष्ठा है। जो व्यक्ति नित्यानन्दाभिन्न-विग्रह कृष्णके प्रकाशमूर्त्ति जगद्गुरुके श्रीचरणोंमें आश्रित हैं, वे लोग ही प्रतिष्ठित हैं—वे ही प्रतिष्ठाके एकच्छत्र मालिक नित्यानन्द प्रभुकी प्रतिष्ठाके उत्तराधिकारी हैं।

सभी प्रतिष्ठाएँ मेरे गुरुदेवके सम्मुख ही नित्यकाल प्रतीक्षा करती हैं। मेरे गुरुदेवकी तरह प्रतिष्ठा-सम्पत्ति जगतमें किसीके निकट रह नहीं सकती। कोई उनकी प्रतियोगिता नहीं कर सकता। प्रतियोगिता करनेपर उनकी 'अप्रतिष्ठा' या 'पतन' अनिवार्य है। सारा जगत् सेवोन्मुख सर्वेन्द्रियोंसे मेरे गुरुदेव की आरति करनेपर ही वे लोग प्रतिष्ठित रह सकते हैं। तब वे जान सकते हैं कि 'गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः' अभिमान ही उनकी नित्य प्रतिष्ठा है। कृष्णप्रेष्ठ गुरुदेवकी प्रतिष्ठाकी पताका प्रचार करना ही—श्रीमती वृषभानुनन्दिनीराधिकाजी की प्रतिष्ठाकी विजय-वैजयन्ती फहराना ही प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी पराकाष्ठा है।

अस्थायी स्थान-काल-पात्रकी प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठा नहीं है। वह अप्रतिष्ठा या पतन है। भोगी प्रतिष्ठाके मोहसे प्रलुब्ध होकर जितना ही कर्मवीर, धर्मवीर क्यों न बनें, त्यागी व्यक्ति प्रतिष्ठा रूपी बाघिनीके भयसे भीत होकर हिमालयकी गुफामें छिप क्यों न जाय, वे लोग पतनोन्मुख हैं। किन्तु जो व्यक्ति नित्यानन्द की प्रतिष्ठा-पताकाके तलमें आश्रय ग्रहण किए हुए हैं, जो व्यक्ति गोपीजनवल्लभ कृष्णके दासानुदास अभिमान प्रबल करनेमें समर्थ हुए हैं, सारी प्रतिष्ठा उनकी ही है, वे लोग पृथिवीकी प्रतिष्ठा-प्राप्ति या अप्राप्तिके भयसे भीत नहीं हैं।

श्रीनित्यानन्द प्रभुके पादपद्मोंमें प्रतिष्ठा का पातिव्रत्य रक्षित होता है। श्रीनित्यानन्दके आनुगत्यसे थोड़ा भी विच्युत होनेपर प्रतिष्ठा-सतीकी आनुकरणिक प्रतियोगिनी 'धृष्ट' श्वपचरमणी' शौकरविष्ठा तुल्या जड़ा प्रतिष्ठा बहुरूपिणी होकर हमें प्रलुब्ध करती है। हम दूसरे प्रबन्धमें इस बहुरूपिणी व्यभिचारकी बात आलोचना कर उसके कवल से रक्षा पानेके लिए श्रीगुरुदेवकी वाणीका आवृत्ति करेंगे।

(सामाहिक गौड़ीयसे अनूदित)

श्रीजन्माष्टमीपर दार्शनिक आलोचना

(संख्या ६, पृष्ठ १४४ से आगे)

तत्त्ववस्तु भाव एवं अभाव—दोनों धर्मोसे युक्त स्वीकार करनेपर कोई दोष नहीं होता, बल्कि युक्तिकी और भी उपादेयता ही होती है। वेदोंमें जो निर्गुण उक्ति है, वह भी विष्णुके लिए ही कही गई है। 'विष्णु-सहस्र-नाम' ग्रंथमें उनके गुणोंमें निर्गुणको भी एक गुण कहकर वर्णन किया गया है। निर्गुणको गुण कहनेपर वाक्यव्याघात या दूसरा अर्थ नहीं होता। क्योंकि "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः" (सर्वनाश उपस्थित होनेपर पण्डित आधेका त्याग करता है) इस न्यायके अनुसार गुणका प्राकृतत्व परिहार अर्थात् प्राकृत गुणशून्यताको ही पण्डित ग्रहण करते हैं। अतएव तत्त्वविद् पण्डित लोग तत्त्वको ब्रह्म, आत्मा एवं भगवान् कहते हैं। केवलाद्वैतवादी ब्रह्म एवं आत्माको एक कहते हैं, यह बात कही जा चुकी है। केवलमात्र भगवानके भयसे वे लोग डरकर सब समय ही उनके प्रति शत्रुता करनेकी चेष्टा करते हैं।

श्रीव्यासदेव कहते हैं—"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"—कृष्ण ही एकमात्र स्वयं भगवान् हैं। अतएव विरोध ही मायावादीका धर्म है। कृष्ण-विरोध करनेके कारण ही वे नाना प्रकारके विपद् प्राप्त करते हैं। कृष्णके ऐश्वर्य-प्रभावसे या गुणधर्म प्रभावसे उनका विनाश होनेके कारण वे सर्वदा ही शङ्कित, भीत एवं त्रस्त हैं। जिससे कृष्णका आविर्भाव न हो या आविर्भाव होनेके साथ साथ जिससे उनका विनाश किया जा सके, इसीके लिए केवलाद्वैतवादी सब समय चेष्टा करते हैं एवं नाना प्रकारके कौशल-जाल विस्तार करते हैं। किन्तु भगवानका ऐश्वर्य ही ऐसा है कि मायावादका शृंखल उनके आविर्भावके पहले ही छिन्न होकर भगवान् एवं उनके भक्तोंका द्वार पूर्णरूपसे उद्घाटित हो गया है। अतएव आज जन्माष्टमी-तिथिमें भावाभाव धर्म विशिष्ट महैश्वर्यवान् परम ब्रह्म परमात्मा स्वयं भगवान् कृष्ण केवलाद्वैतवाद रूपी कंसके हाथसे निर्विघ्नतासे जन्म प्राप्त कर नन्दालयमें पहुँचे। अतएव हे कृष्णदासों! आप लोग सभी केवलाद्वैतवादका विनाश करनेके लिए एवं कृष्णको निर्विघ्नतासे हृदयमें आविर्भाव करानेके लिए जयगान करें—

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे
भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे
यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ-३३)

कर्म भी जिस प्रकारसे भगवत्-सम्मुखता का रूप धारण करता है, यही बात निम्न लिखे श्लोकोंमें कही गयी है—

स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ।
न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥
अस्मिन् लोके वर्त्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥

(भा० ११।२०।१०)

हे उद्धव ! जो व्यक्ति स्वधर्ममें वर्तमान रहकर फलकामनासे रहित होकर यज्ञादि कार्य करते हैं, वे यदि अन्य आचरण न करें, तो स्वर्ग या नरकमें नहीं जाते। परन्तु पापरहित, पवित्र, स्वधर्मके पालन करनेवाले व्यक्ति इस लोकमें ही विशुद्ध ज्ञान या भाग्यके कारण मेरी भक्ति प्राप्त करते हैं।

कर्त्तव्यका अनाचरण एवं निषिद्ध कार्य का आचरण करनेपर नरकमें जाना होता है। अतएव अपने धर्ममें स्थिति एवं निषिद्धका वर्जन करनेके कारण उन्हें नरकमें जाना नहीं पड़ता, दूसरी ओर फलकामना नहीं होनेके कारण स्वर्गमें भी जाना नहीं पड़ता। अनघ अर्थात् निषिद्ध-परित्यागी होनेके कारण पवित्र अर्थात् रागादि मलिनतासे रहित है। 'यदृच्छया' शब्दद्वारा केवल ज्ञानसे भी भक्ति की दुर्लभता प्रकाश हुई।

अफलकामत्वके अर्थमें केवल ईश्वरका आदेश समझकर ही कर्मका अनुष्ठान है। ज्ञानी व्यक्तिका संग होनेपर वहाँ केवल उसी कर्मका भगवदर्पण होता है। किन्तु भक्तसंग होनेपर भगवत् सन्तोषमयत्व होता है। अतएव 'यदृच्छा' शब्द द्वारा भक्तसंग एवं उनकी कृपारूपी सौभाग्य-प्राप्तिको समझना होगा।

यहाँ भगवत्-सम्मुखताका द्वारस्वरूप कर्म साक्षात् सम्मुखता रूप ज्ञान एवं भक्तिके उदय होने तक ही रहता है। अतएव कर्मकी निकृष्टता बतलाई जा रही है। साक्षात् सम्मुखतामें निर्विशेष तत्वकी सम्मुखता ज्ञान नामसे कही जाती है। सविशेष तत्व भी भगवान् एवं परमात्मा—इन दो मुख्य आविर्भावयुक्त होनेके कारण सविशेष सम्मुखता रूपी भक्तिकी भी भगवन्निष्ठता एवं परमात्मनिष्ठता रूप दो प्रकारके भेद वर्त्तमान हैं। ये तीनों भाव श्रीगीतामें कहे गये हैं। उनमें "अक्षरं परमं ब्रह्म" श्लोकमें (८।३) ब्रह्म और "यदक्षरं वेदविदो वदन्ति" (८।११) श्लोकमें ज्ञानात्मिका उपासना कही गई है। "पुरुषश्चाधिदैवतम्" (८।४) "अभ्यास

योगयुक्तेन" (८।८) "कविं पुराणमनुशासितारं (८।९) श्लोकमें परमात्म-भक्तिकी रीति कही गई है। नीचे कहे गये श्लोकमें भगवत् भक्ति की रीति कही गई है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(गीता ८।१४)

हे पार्थ! जो अनन्यचित्त व्यक्ति सब समय मेरा स्मरण करता है, मैं उस नित्ययुक्त योगीके लिए सहज ही में प्राप्य हूँ।

श्रीमद्भागवतमें भी "तथापि भूमन्" (१०।१४) श्लोकमें ब्रह्म-सम्मुखता, "केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्" (२।२।८) श्लोकमें परमात्म-सम्मुखता एवं "भक्तियोगेन मनसि" (१।७।४) श्लोकमें भगवत् सम्मुखता कही गई है। "श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो" (१०।१४।४) जो व्यक्ति श्रेयमार्ग रूपा भक्तिका परित्याग कर ज्ञान पानेके लिए परिश्रम करते हैं आदि श्लोकोंमें भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञानका अकिंचित्करत्व प्रतिपादन किया गया है।

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥
यत्कर्मभिर्यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदि वांछति॥
(भा० ११।२०।३१-३३)

अतएव मेरी भक्तिसे युक्त मदात्मा या मत्परायण योगीके लिए ज्ञान या वैराग्यद्वारा प्रायः ही मङ्गल नहीं होता। किन्तु कर्म, ज्ञान, तपस्या, वैराग्य, योग, दान, अन्यान्य शुभ कर्मोंद्वारा जो कुछ भी पाया जाता है, वह समस्त ही मेरे भक्त भक्तियोगद्वारा अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। स्वर्ग, मोक्ष या मेरे धाम जो कुछ वे इच्छा करते हैं, अनायास ही सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। भक्ति ज्ञानसे निरपेक्ष होनेके कारण एवं भक्तिद्वारा गौण रूपसे समस्त फल प्राप्त होनेके कारण ज्ञानका तिरस्कार किया गया है। इसके पश्चात् अवशिष्ट सविशेष-उपासना रूपा भक्तिमें भी कोई कोई श्रीकृष्णरूपका अनादर कर निराकार ईश्वर एवं अन्याकृतिविशिष्ट ईश्वरकी उपासनाको जो श्रेष्ठ समझते हैं, उस बातका भी तिरस्कार किया गया है। अतएव भक्ति का श्रेष्ठत्व वर्णन किया गया है। अकिंचना भक्ति ही जीवोंका स्वाभाविक धर्म है। 'मैं सब स्थानोंमें, सब समय, सभी अवस्थाओंमें भगवान् विष्णुका सब प्रकारसे दासत्व करूँगा—ऐसी भावना करते हुए मनुष्य स्वरूपसिद्ध मुख्य विष्णुदास्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मन्त्रार्थ जानकर पुरुष भगवद्दास्य का भली प्रकारसे अनुष्ठान करेंगे। भजनीय चरणका नित्यत्व होनेके कारण भजनका भी नित्यत्व है।

परम दुर्लभ फल अकिंचना साक्षात् भक्तिरूप भगवत्सम्मुखता किस प्रकार प्राप्त होती है, यह कहा गया है—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-

-ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥
(भा० १०।५१।५३)

हे भगवन्! संसारमें भ्रमणशील जीवका जिस समय भवापवर्ग अर्थात् उपयुक्त समय होता है, तब ही सत्संग प्राप्त होता है। यहाँ जब ही साधुसंग होता है, तब ही भवापवर्ग होता है, यह कहना उचित था। किन्तु ऐसा न कहकर कार्य-कारणके विपर्यय कथनद्वारा सत्संगको अवश्य अपेक्षणीय रूपसे कहा गया है। ऐसे सत्संग प्राप्त होनेपर स्थावर-जङ्गमके अधिष्ठाता सद्गतिरूप आपके प्रति उसकी रति होती है। इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्णने नलकूबर एवं मणिग्रीवसे कहा था—

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा॥
(भा० १०।१०।४१)

सूर्यके दर्शनसे जिस प्रकार मनुष्योंका नेत्रबन्धन (नेत्रोंका अन्धकार) विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार समचित्त विशेषकर मेरे प्रति अर्पितचित्त साधुओंके दर्शनसे जीवोंका भवबंधन विनष्ट हो जाता है।

अतएव आलङ्कारिक व्यक्तियोंने इस श्लोकको अतिशयोक्ति नामक अलंकारके चौथे भेदका उदाहरण कहा है। कार्योत्पत्ति विषयमें कारणकी शीघ्रकारिता वर्णन करनेके लिए कारणके पूर्व कार्यकी उक्ति होनेपर चौथे प्रकारकी अतिशयोक्तिमें माना जाता है।

इस विषयमें कारण यही है कि जब सत्संग होता है, तब ही स्थावर-जङ्गमके अधिष्ठाता स्वरूप आपके प्रति भगवत् ज्ञान होनेके पहले जो अनादिसिद्ध भाव था, जो जीवोंके लिए भगवत् विमुखता उत्पन्न करानेवाला है, उसका नाश होनेपर भगवत् ज्ञान होता है। अतएव श्रीविदुरजीने कहा है—

जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवात्
अधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं
भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य॥
(भा० ३।५।३)

दैववशतः या दुर्भाग्यके कारण अधर्मपरायण, कृष्णविमुख, अत्यन्त दुःखित व्यक्तियोंके प्रति अनुग्रह करनेके लिए जनार्दन भगवान्‌के प्रिय मङ्गलमय साधु लोग निश्चय ही इस जगत्‌में विचरण करते हैं। "दैवादधर्मशील" इस वाक्यसे पूर्व कर्मके कारण भगवद्धर्म रहित पुरुषके लिए कहा गया है। मूल श्लोकमें "यर्हि" (जिस समय) "तदैव" (उस समय ही) ऐसे कथनके कारण काल बिलम्बके बिना ही भगवद्विषयिणी मतिका उदय होता है, ऐसा कहा गया है। "तदैव" इस वाक्यमें 'एव' शब्दका प्रयोग होनेके कारण उस समय ही होता है, दूसरे समयमें कदापि नहीं होता, यही तात्पर्य है। अतएव तद् (भगवद्) विषयिणी मतिका कारण है—सद्गतिरूप अर्थात् जहाँ जहाँ सत्पुरुष मिलित हों, वहीं "गति" अर्थात् जिनका प्रकाश है, ऐसे आप (भगवान्) के प्रति

मति होती है।

इतिहास समुच्चयमें भी कहा गया है—

यत्र रागादिरहिता वासुदेवपरायणः।
तत्र सन्निहितो विष्णुर्नृपते नात्र संशयः॥

हे नृपते! जिस स्थानमें विषय रागादि रहित वासुदेवपरायण भक्तवास करते हैं, वहीं विष्णु निवास करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अथवा "सद्गतिस्वरूप" अर्थात् 'सज्जनोंके गतिस्वरूप' ऐसा अर्थ लेनेपर भी वे असद् व्यक्तियोंके गतिस्वरूप नहीं है, ऐसा अर्थ होता है। अतएव सद्व्यक्तियोंके संगद्वारा ही भगवान्की प्राप्ति युक्तियुक्त है।

पिंगला नामक वेश्याका भी जो संग हुआ था, वह उसके कथन—'विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः'(भा०११।८।३४) अर्थात् इस विदेह नगरीमें मैं ही एकमात्र मन्दबुद्धि वाली हूँ, द्वारा प्रकाशित है। श्रीधर स्वामी टीकामें—'हाय! सत्संग रहनेपर भी मेरा ऐसा मोह वर्त्तमान है' इस अभिप्रायसे उसके द्वारा "इस विदेहनगरीमें" आदि वाक्य कहे गये हैं। अतएव जिस स्थानमें सत्संग न पाया जाय, वहाँ भी वर्त्तमान जन्म-सम्बन्धी या पूर्व-जन्म सम्बन्धी या परम्परा-सम्बन्धसे उत्पन्न सत्संगका अनुमान हो सकता है। क्योंकि सत्संगके बिना श्रद्धाका उदय नहीं हो सकता। जो व्यक्ति श्रीनारदादि भक्तोंके दर्शन प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे देवता आदियोंका श्रीनलकूबरादिकी तरह स्थावर-योनि प्राप्ति कहीं भी देखी नहीं जाती। अतएव ऐसी विवेचना करनी होगी कि जीवोंका यदि अपराध रहे, तो उस अपराधके दोषसे मनुष्य लोग सज्जनोंके प्रति अनादर युक्त एवं साधारण पुण्यादि विषयोंमें प्रयासी होते हैं। यहाँ ऐसे अपराधकी शान्ति एवं सत्संगकी भगवत्-सन्मुखता उत्पादन करनेमें भगवान्की कृपा-सहायताकी अपेक्षा है। यद्यपि सत्संग ही भगवत्-सन्मुखताका कारण है, तथापि अपराध वहाँ बाधा स्वरूप है। अतएव भगवान्की कृपासे बाधा दूर होती है। जो व्यक्ति निरपराधी हैं, उनको सत्संग द्वारा ही परमोत्तम दृष्टि प्राप्त होनेपर चित्त सज्जनोंके प्रति सावधान न रहनेपर भी सत्संग मात्र ही भगवत्-सन्मुखताका कारण हुआ करता है। अतएव अपराधी व्यक्तियोंको लक्ष्य कर ही महदादि तत्त्वोंके अभिमानी देवताओंने कहा है—

तान् वै ह्यसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये
पराहृतान्तर्मनसः परेश।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं
ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः॥
(भा० ३।५।४५)

जिन व्यक्तियोंकी असद्वृत्तिपरायण इन्द्रियोंने उनकी अन्तर्मुखी चित्तवृत्तिको आपसे दूर कर दिया है, हे परेश (परमेश्वर)! हे उरुगाय (श्रेष्ठकीर्त्तिवाले)! आपके पादपद्म के विलासकी शोभामें मग्न व्यक्ति लोग ऐसे व्यक्तियोंका निश्चय ही कृपा दृष्टिद्वारा दर्शन नहीं करते।

आपके पदविन्यासलक्ष्मी सम्बन्धीय' व्यक्ति अर्थात् ऐसे पादपद्म विलास शोभामें मुग्ध भक्त निश्चय ही उनका दर्शन अर्थात् कृपादृष्टिका विषय उन्हें नहीं बनाते। किनका दर्शन नहीं करते ? जिनकी असद्वृत्ति अर्थात् अपराध चेष्टापरायण सभी इन्द्रियोंने अन्तर्मुखी चित्तवृत्तिको विदूरित कर दिया है अर्थात् जो व्यक्ति बहिर्मुख हैं, उन्हें कहा गया है। यहाँ असद्वृत्ति-शब्दद्वारा साधारण असद्वृत्तिको नहीं कहा है, क्योंकि ऐसा होने होनेपर भगवान्की कृपा होनेके पहले सभीका ही असद्वृत्ति रहनेके कारण "जनस्य कृष्णाद् विमुखस्य दैवात्" आदि विदुरजीके वाक्यसे असद्वृत्ति परायण व्यक्तिके प्रति जो कृपा होती है, वह भी नहीं हो सकती है। अतएव साधारण रूपसे अपराधके असद्भावसे साधुओं की कृपा हुआ ही करती है। उनकी कृपा-प्राप्ति विषयमें अपना मनोयोग न रहनेपर भी यहाँ तक तो क्या, प्रवृत्तिके न रहनेपर भी केवल साधुसंगके कारणसे ही उनकी सम्मति हुआ करती है।

जिस स्थानमें स्वाधीनताके कारण अपराधी व्यक्तिके प्रति भी साधु लोग कृपा प्रकाश करते हैं, वहाँ वह दया केवल नलकूबर या साधारण देवताकी तरह व्यक्तिविशेष के लिए ही जानना होगा, परन्तु सभी अपराधियों के लिए नहीं। अतएव विष्णु धर्ममें उपरिचर-वसुके लिए कहा है—उपरिचरवसुने देवताओं की सहायता कर दैत्योंका विनाश करनेके पश्चात् वैराग्य उपस्थित होने पर भगवान्का ध्यान करनेके लिए पातालमें प्रवेश किया। उस समय दैत्य उनका वध करने के लिए उपस्थित हुए एवं उपरिचरवसुके प्रभावसे वे लोग अस्त्र हाथमें धारण करते हुए स्तम्भित हो गये। इससे वे व्यर्थ मनोरथ होकर शुक्राचार्यके उपदेशसे उपरिचरवसुको पाखण्ड-धर्मका उपदेश करने जाकर उन भक्तकी कृपासे भगवद् भक्त हुए थे। अतएव कहा गया है—

अनेक जन्मसंसारचिते पापसमुच्चये।
नाक्षीणे जायते पुंसां गोविन्दाभिमुखी मतिः॥

बहुतसे जन्म रूप संसारसे उत्पन्न पापों का जब तक नाश नहीं होता, तब तक जीवोंमें श्रीकृष्णोन्मुखी मति का उदय नहीं होता।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि भक्तकी कृपासे ही संसारके बन्धनका नाश हो, तो श्रीप्रह्लादजीने श्रीनृसिंह भगवान्से ऐसे क्यों कहा ?—

नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
नान्यस्त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये।

हे देव ! इस संसारमें मूढ़ जीवोंका परित्याग कर मैं अकेले मुक्त होनेकी इच्छा नहीं करता। संसारमें परिभ्रमणशील इनके लिए आपको छोड़कर और कोई गति नहीं है।

श्रीप्रह्लादजीके इस वाक्यसे समस्त संसारी जीवोंके प्रति ही कृपा देखी जाती है। किन्तु उस कृपा द्वारा सभीकी मुक्ति क्यों नहीं होती ? इसका यही उत्तर है कि जीव अनन्त होनेके कारण उस समय सभी जीवोंकी बात

उन्हें याद नहीं थी, किन्तु उन्होंने जिनका दर्शन किया था या जिनकी बात श्रवण की थी, केवल उनकी बात ही स्मरण होनेके कारण उन भक्तश्रेष्ठ की कृपासे उन व्यक्तियों की मुक्ति अवश्यंभावी जानना होगा। उनके कथनमें "नैतान्" पदमें स्थित 'एतद्' शब्द प्रयोग द्वारा कुछ निर्दिष्ट जीवोंके बारेमें कहा गया है। इसी प्रकार संसारी व्यक्तियोंके सम्बन्धमें भी इस प्रसंगके कीर्त्तन एवं स्मरण द्वारा ही कृतार्थता-प्राप्ति रूप वर श्रीनृसिंहदेवजीने कृपा कर प्रदान किया था—

य एतत् कीर्त्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः।
त्वां माञ्च स्मरन् काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते॥
(भा० ७।१०।१४)

हे प्रह्लाद! जो मनुष्य तुम्हें एवं मुझे स्मरण कर तुम्हारे द्वारा गाये हुए इस स्तोत्रका कीर्त्तन करे, वह व्यक्ति कालक्रमसे कर्मबन्धनसे मुक्त होगा। जो तुम्हारा कीर्त्तन करे, उसीकी मुक्ति होगी। इसलिए कृपा कर तुम जिनका स्मरण करोगे, उनकी मुक्ति होगी, इसमें क्या सन्देह है? यही इस वाक्य का तात्पर्य है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

शास्त्रीय-साधुसंग

चिन्तामणिर्जयति सरस्वती गुरुर्मे
शिक्षागुरुश्च भगवान् शिखिपिञ्छमौलिः।
यत्पाद कल्पतरु-पल्लव शेखरेषु
लीलास्वयंवर-रसं लभते जयश्रीः॥

श्रीराधाजीके प्राणबन्धु श्रीकृष्णके लिए प्राणापेक्षा भी जो प्रियतम हैं, श्रीकृष्णके यथासर्वस्व श्रीराधाजीके जो नयनतारा स्वरूप हैं, श्रीगौरांग एवं श्रीराधा गोविंदके जो नित्यसंगी हैं, जो मुझ जैसे पतितके एकमात्र बन्धु हैं, आश्रय प्राण एवं जीवन-स्वरूप हैं, ऐसे पतितपावन, महावदान्य, दयाके सागर मेरे नित्य प्रभु, नित्य उपास्य, हृदय-देवता श्रीगुरुदेव—जिनके पादपद्मरेणु ही मेरे लिए नित्य आकांक्षणीय हैं एवं परम प्रयोजनीय हैं, ऐसे चिन्तामणिस्वरूप गौर-राधा निजजन श्रीश्रीमद् भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जययुक्त हों। वे अदोषदर्शी दीनबन्धु प्रभु मुझ जैसे पतित अपराधी जीवोंके अपराधोंको अपने गुणसे क्षमा कर हमारे प्रति कृपादृष्टि करें, अपनी नित्यसेवा का सुयोग प्रदान करें—उनके

श्रीचरणकमलोंमें एकमात्र प्रार्थना एवं निवेदन है।

मैं अन्ध, अज्ञ एवं पतित हूँ। अच्छे बुरे का मुझे ज्ञान नहीं था। किन्तु श्रीगुरुदेवने इस जगतमें आकर मुझ जैसे अज्ञानान्धको कृपापूर्वक बतलाया है कि 'साधुसंगके बिना मंगलका कोई उपाय नहीं है, साधुसेवा या साधु कृपाके बिना भगवत्सेवा पानेका या भगवत्कृपा पानेका कोई पथ नहीं है। भगवदनुगत एवं कृष्णैकशरण व्यक्ति ही साधु हैं। ऐसे साधुका संग ही हमारे लिए परम प्रयोजनीय एवं चरम कल्याणप्रद है। एक बातमें साधु ही जीवनके जीवनस्वरूप हैं। साधुके बिना—गौरभक्तोंके बिना हमारे परम बन्धु या आत्मीय और कोई नहीं है। जिनकी कृपासे ये सभी मंगलमयी वाणी सुननेका सुयोग हुआ है, जिनका देव-दुर्लभ संग एवं जिनके निजजनके संग लाभसे मुझ जैसा पतिताधम भी कृत-कृतार्थ हो जाता है, ऐसे दीनतारण जगद्बन्धु प्रभुके श्रीचरणोंमें कृपा प्रार्थना को छोड़कर मेरे लिए क्या गति है? अतएव जोड़े हुए हाथोंसे मस्तक झुकाकर यह प्रार्थना करता हूँ—

आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीमद्रूप पदांभोज-धूलिः स्यां जन्मजन्मनि॥

श्रीमद्भागवतमें "ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जते बुद्धिमान्। संत एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥"—इस श्लोक द्वारा असत्संग त्याग कर सत्संग ग्रहणका उपदेश दिया है। जन्म जन्मान्तरके संस्कार पुष्ट गुप्त मनोधर्मरूप भोग-पिपासा या प्रच्छन्न भोगरूप त्याग-पिपासा इस साधुसंगके प्रभावसे या साधुओंके श्रीमुख-विगलित तीक्ष्ण वाक्यास्त्र के द्वारा हृदयसे चिरदिनके लिए दूर हो जाती है। ऐसे साधुसंग या साधुसेवाके प्रति उदासीन होनेपर मङ्गल पानेका या चेतनता विकाश होनेका या भगवत्-प्रीति प्राप्त करनेका और कोई पथ नहीं है। यह साधुसंग अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी निष्कपट साधुसंग प्रार्थीके लिए सुलभ है। इस असाधु जगतमें साधु पाना कठिन जानकर भगवान् संग प्रदान करनेके लिए कृपा कर इस जगत्में प्रकट होते हैं, या कभी उनके श्रेष्ठ निजजनोंको इस जगत्में भेज देते हैं।

साधु दो प्रकारके हैं—(१) शास्त्ररूपी और (२) भक्त। ये दोनों ही भगवान् एवं भगवद् भक्तोंकी बात कीर्त्तन करते हैं। ये शास्त्र एवं भक्त—जीवोंके एकमात्र बन्धु एवं मङ्गलाकांक्षी होनेके कारण दोनों ही जीवोंके जीवन-स्वरूप हैं। अतएव जो व्यक्ति बुद्धिमान्, सत्यानुसन्धानपर एवं श्रेयःकामी हैं, वे इस शास्त्र एवं साधुका संग त्याग कर रह नहीं सकते। वे लोग असत्संग त्यागमें दृढ़ता एवं सत्संग-ग्रहणमें उत्सुक होकर सदाचार-पालनमें दृढ़व्रत होनेके कारण कभी तो भक्त-भागवतका संग एवं उसके अभावमें शास्त्रीय साधुसंगमें यत्न करते हैं। चेतन जीव चौबीस घन्टे संग न कर रह नहीं सकता। या तो सब समय साधुसंग करेगा, नहीं तो उसके बदलेमें भीतर एवं बाहर असत्संग अवश्य ही करेगा। जब सब

समय हमें भक्त भागवतका संग नहीं मिलता, तब ऐसी अवस्थामें शास्त्रीय साधुसंगके बिना हमारे मंगलका क्या उपाय हो सकता है? साधुसंग, न करनेपर कृष्णके प्रति मति नहीं होती। इसलिए साधु-शास्त्रके आनुगत्यसे रहित सेवाकी छलनासे अपना इन्द्रियतर्पण कर साधुसंगके प्रति या सत्सिद्धान्तालोचनाके प्रति उदासीन रहने पर हमें क्या प्राप्त होगा? साधुका संग या आनुगत्य ही सेवा है। साधुके श्रीमुखविगलित हरिकथा एवं शास्त्रोंकी बातें ही हमें श्रीहरि-वैष्णव-गुरुकी सेवा की ओर आकर्षण करती हैं। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति साधु-शास्त्रका बातोंमें, उनकी आलोचनामें एव उनकी सेवामें मन एवं प्राणका समर्पण कर देते हैं। शास्त्रोंकी आलोचनामें आलस्य रहने पर हमारा मंगल कदापि न होगा।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव—ये सभी अधोक्षज एवं नित्य सेव्य वस्तु हैं। यह न जानकर यदि हम शास्त्र, श्रीमूर्त्ति, श्रीनाम एवं श्रीवैष्णव को प्राकृतिक समझें, उन्हें इस जगतको वस्तु समझकर उनकी अवज्ञा करें, तो हम अपराध-पंकमें निमग्न होकर उनकी सेवासे वंचित ही रहेंगे। साधुकी वाणी या शास्त्रोंकी आलोचना यदि न करें, तो वाक्य वेगके वशीभूत होकर हम इस जगत्की आलोचनामें या असदालोचनामें बहुत कुछ प्रकाश्य या गुप्त रूपसे व्यस्त होंगे ही। इसलिए शास्त्रादिकी आलोचनामें इच्छा न रहने पर भी शास्त्रकी महिमा शास्त्रज्ञ साधुके निकट सुनकर उसकी आलोचनामें प्रयास करना बुद्धिमान् व्यक्तिका कर्त्तव्य है। आदरके साथ श्रीनाम करते करते जिस प्रकार श्रीनाममें रुचि होती है, साधु-गुरुके आनुगत्यमें शास्त्रालोचना करते करते उसी प्रकार शास्त्र वाक्यमें दृढ़ श्रद्धा एवं रुचिके उदय होने पर जीव शास्त्रको ही जीवन-स्वरूप एवं आश्रय-स्थल जाननेका सौभाग्य पाता है। तब वह ग्रन्थ भागवत एवं भक्त-भागवतका संग किये बिना रह नहीं सकता। ये दोनों संग ही तब उसके प्रार्थनीय एवं आलोच्य विषय होते हैं। हम सभी समय जीवन्त साधुका संग न पाने कारण परम करुणामय श्रील प्रभुपादजीने उनकी कृपाप्राप्त व्यक्तियोंसे कहा है—"हरिभजन न करने पर जीव ज्ञानी, कर्मी या अन्याभिलाषी हो जाते हैं, इसलिए सर्वदा भगवानूको महामन्त्र उच्चारण कर पुकारें। संख्या निश्चय कर कृष्णनाम ऊँचे स्वरसे कीर्त्तन करनेपर अनर्थ-निवृत्ति होती है, जड़ता दूर होती है। शास्त्रीय साधुसंग उत्तम है। पश्चात् भजन शिक्षाके लिए साधुसंग स्वतन्त्र है। पारमार्थिक पत्रिकाका अच्छी प्रकारसे पाठ करना होगा। कल्याण-कल्पतरु, प्रार्थना, श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रंथ समयानुसार आलोचना करेंगे। निरपराधसे हरिनाम ग्रहण करनेपर सभी सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं। शास्त्र-श्रवण, पठन एवं उस विषयका अनुशीलनद्वारा श्रीनाम उदित होते हैं। वर्त्तमान अनर्थ—श्रवण-कीर्त्तन प्रबल करनेपर वे प्रबल नहीं होंगे।

(क्रमशः)

श्रीव्यास-पूजाका निमन्त्रण

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
पो०—नवद्वीप (नदिया)
१४ जनवरी १९७४

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रमणसंघाराध्य-वेदान्त विद्याश्रितेषु—

आगामी २६ माघ, ९ फरवरी, शनिवार, माघी कृष्णा ततीयाको श्रीव्यासाभिन्न नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-तिथि और २८ माघ, ११ फरवरी, सोमवार, माघी कृष्णा पञ्चमीको जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' की आविर्भाव-तिथि—इन दोनों तिथियोंकी पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त मठोंमें विशेषकर मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ामें आगामी २६ माघसे २८ माघ—तीन दिनों तक श्रीश्रीव्यास-पूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पञ्चक अर्थात् श्रीकृष्ण-पञ्चक, व्यास-पंचक, मध्वादि आचार्य-पंचक, सनकादि-पंचक, श्रीगुरु-पंचक और तत्त्वपंचककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे। प्रतिदिन हरिकीर्त्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तवपाठ, श्रीहरिगुरु-वैष्णव-संशन और अञ्जलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे।

धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बान्धवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे। इस महदनुष्ठानमें योगदान करनेमें असमर्थ होनेपर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करनेपर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी।

वैयासकृपानुगत्याभिलाषी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य:—शनिवार को श्रीव्यास-पञ्चकादि, श्रीलगुरुदेवके पादपद्मोंमें पुष्पाञ्जलि, विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त प्रबन्ध-पाठ, भाषण। रविवारको श्रीगुरुतत्वके सम्बन्धमें प्रवचन। सोमवारको श्रील प्रभुपाद के श्रीपादपद्मोंमें अञ्जलि-प्रदान, प्रबन्धादि पाठ एवं श्रीमद्भागवतसे श्रीव्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना।